साहित्य के प्रांगण में थिरकती हुई गंगा

*** प्रो0 ओम् प्रकाश पाण्डेय**

भारत की प्राचीनतम नदी गंगा का असंदिग्ध उल्लेख न्यूनतम है ही। ऋक्संहिता के दशम् मण्डल (10.75.05) के निम्नलिखित मन्त्र में इसका सर्वप्रथम उल्लेख गंगा की अनादि गरिमा का सुस्पष्ट प्रमाण है–

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचतापरुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।।

ऋग्वेद के ही षष्ठ मण्डल में गंगा के तट पर रहने वाले ''गाङ्य'' शब्द का प्रयोग है। (ऋ0 सं0 6.45.1)।

शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) में दुष्यन्त कुमार भरत की उन विजयों का उद्घोष है, जिन्हें गंगा और यमुना के तटों से किये गये पराक्रम से प्राप्त किया गया था–

'भरतो दौः षन्तिर्यमुनामनु गंगायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतं हयान्।'

ऐतरेय ब्राह्मण (8.23) तथा वैतानसूत्र में भी ये विजयें उल्लिखित हैं लेकिन गंगा के गौरव का समुल्लेख सर्वाधिक तैत्तिरीय आरण्यक (2.20) में है, जहाँ गंगा और यमुना के तटों पर रहने वालों को 'अभिजात' माना गया है। यह कृष्णयजुर्वेदीय आरण्यक निश्चित ही गंगा तट पर रचा गया।

'गं गं' का उद्घोष करती हुई प्रवाहित होने वाली इस नदी का नामकरण भी इसी आधार पर हुआ।

वेद–काल के अनन्तर, पुराणों के युग में इस नदी क धार्मिक मान्यता में विशेष वृद्धि हुई, जब यह 'ग' से आरम्भ पाँच श्रेष्ठतम विभूतियों– गंगा, गायत्री, गणेश, गुरु और गीता के शिखर पर आरूढ़ हुई। जो पुण्य बहुधन–जन और काल साध्य बड़े–बड़े यज्ञों के अनुष्ठान से प्राप्य था, अब गंगा में मात्र एक डुबकी लगाने भर से साध्य हो गया। गंगा तट पर किया गया महीने भर का कल्पवास अनेक जन्मों के पाप–ताप का नाशक मान

* बी–1/4, विक्रान्तखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ

लिया गया। हिमालय से निकलकर हरिद्वार, प्रयाग और काशी–सदृश अति प्राचीन तीर्थों को अभिषिक्त करती हुई बंगप्रदेश तक यह महानदी भारत के सर्वाधिक भूभाग को अपने जल से सींचकर उपजाऊ बनाती है। गंगा–यमुना का मध्यवर्ती यह भूभाग अन्तर्वेदी कहलाता है, जो कृषि–सम्पदा के रूप में अक्षरशः सोना–चाँदी जैसी उपज ही उपलब्ध कराता है। यह शिव की वह प्रिया है, जो उनके सिर पर चढ़ी रहती है। कहते हैं काशी में दशाश्वमेध घाट के पास बहतीं हुई गंगा की धारा कदाचित् उमड़कर विश्वनाथ का स्वयं सर्वप्रथम अभिषेक करती थी। प्रयाग में बड़ी बहिन यमुना के कण्ठालिंगन में निमग्न गंगा की छवि कविकुलगुरु कालिदास को कभी इन्द्रनीलमणियों से गुंथी हुई मुक्तामाल लगी है और थोड़ी ही देर में बाद नीले और श्वेतकमलों की सम्मिलित माला प्रतीत होती है, लेकिन अगले ही क्षण में वह भस्म का अंगराग लगाये महाशिव की देह हो जाती है, जिस पर कृष्णवर्णी सर्प लिपटे हुए हैं।

समर्थ और सुयोग्य गुरु की खोज में पूरी काशी को छानते फिर रहे सन्त कबीर की साध भी पूरी हुई इसी गंगा के तट पर जहाँ बहुत सवेरे स्नान–हेतु आये स्वामी रामाननद के चरण घाट की सीढ़ियों पर सायास लेटे कबीर के शरीर पर अनायास पड़ गये। खोज पूरी हुई। साधक को सिद्धि मिल गयी। कितने ही सन्तों और साधकों की गंगा की इन्हीं सीढ़ियों पर अध्यात्म–साधना सिद्ध हुई इसका लेखा जोखा जह्नुनन्दिनी की लहरों के अतिरिक्त और किसके पास होगा?

'शिवताण्डवस्तोत्र' के रचयिता रावण के लिए यह गंगा 'निलिम्पनिर्झरी' (देवनदी) है, जो शिव की जटाओं से टपकती हुई उनके विषपायी कण्ठ को शीतलता ही नहीं प्रदान करती, उस स्थल की पवित्रता भी बनाये रखती है। पण्डितराज जगन्नाथ की दृष्टि में यह गंगा सम्पूर्ण वसुधा का समृद्ध सौभाग्य है, खण्डपरशु शिव का सर्वोत्तम ऐश्वर्य है, श्रुतियों का सर्वस्व है, देवों का मूर्तिमान् पुण्य है और इसका जल अमृत का भी सौन्दर्य है। भरे दरबार में, बादशाह शाहजहाँ से यवन कन्या लवंगी को

पण्डितराज मांग तो लाये, लेकिन इसके बाद उनका जीवन सामाजिक बहिष्कार के कारण असह्य वेदना से ग्रस्त हो गया। गली–गली में असहिष्णुता की बौछार से वे बेचैन हो उठे। लवंगी के प्रति उनके सच्चे प्रेम को पहचानने के लिए कोई तत्पर नहीं हुआ था। किसके सामने अपने प्रेम की परीक्षा देते। याद आयी मां गंगा की। तटवर्ती सर्वोच्च सोपान पर खड़े होकर बोले– 'यह ठीक है माँ! कि मैंने श्वानवृत्ति अपनायी, झूठ बोला, कुतर्क किये,, दूसरों की चुगली खायी– लेकिन तुम पर सदैव आस्था रखी है– अब तुम भी यदि मेरा परित्याग कर दोगी तो मुझे कौन अपनायेगा।

पण्डितराज की गंगा – आस्था फलवती हुई। वे स्वरचित 'गंगा लहरी' का एक–एक श्लोक, एक–एक शिखरिणी पद्य गाते जाते थे, और गंगा की धारा ऊपर उठती जाती थी। अन्तिम पद्य का पाठ पूरा होते ही, घाट पर खड़े लोगों ने साश्चर्य देखा कि स्वयं गंगा ने ऊपर आकर जगन्नाथ के शरीर को भिगोकर अपने बेटे की निर्दोषिता प्रमाणित कर दी।

जगन्नाथ का सारा आहत अहंकार विगलित हो गया। चित्त निष्कलुष हो उठा। अत्यन्त विनम्रता से बोले– माँ गंगे! मैं अपने मूर्ख साथियों के साथ कहाँ–कहाँ नहीं भटका! किस–किस के पास नहीं गया, लेकिन कहीं भी शान्ति नहीं मिली। जाने कब से सो भी नहीं सका। अब मुझे तुम अपनी उस गोद में सुला लो, जो कोमल पवन के प्रवाह से शीतल है–

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै–
र्विमूढ़ैः संरन्तुं क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम्।
इदानीमुत्संगे मृदुपटानसंचारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम्।।

अपनी विलक्षण प्रतिभा और विद्वत्ता के बल पर पूरी काशी को ललकार ने वाला, शाहजहाँ के दरबार का वह पण्डितराज, जो भरे दरबार में, उनके ही परिवार की राजकन्या का हाथ माँगने में संकोच नहीं करता, माँ गंगा के सामने पूर्णतया निरीह, निष्कपट और निर्मल चित्त से याचना कर रहा है – माँ गंगे! तुम्हीं मुझे विमल कर सकती हो –

'गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु।'

कितने ही सन्तों और साधकों को जीवन के परम सत्य का साक्षात्कार कराने वाली गंगा। उनकी महीयसी और चिरन्तन उपलब्धियों के सपनों को साकार किया है इसकी जलधारा ने। कहते हैं, शास्त्रों के वैदुष्य की अपेक्षा अन्तःकरण की निर्मलता के आग्रही सन्त रविदास की उस कठौती में, जिसमें वे उपानह बनाते समय चर्म–प्रक्षालन किया करते थे, गंगा की जलराशि स्वतः भर गयी थी–

'यह कबीर की साखी, इसमें भक्तों का जीवन–सरबस है, तुलसी के तप का अमृतरस इसमें रामचरितमानस है। इसमें रमा साधकों का मन, सिद्धों का यह क्रीड़ाङ्गन है, 'दादू' की मधुमती भूमिका, 'धुनिया' की सम्मोहक धुन है। श्रीरविदास सन्त की निश्चल निष्ठा की यह पुण्यकहानी जिसके आँगन की कठवत में उतरा था गंगा का पानी।'

(–'संवेदना के शिखर' से)

हिन्दी के रीतिकालीन यशोधर कवि पद्यमाकर जब असाध्य रोग से ग्रस्त हुए, तो गंगा के तट पर डेरा डाल दिया उन्होंने। 'औषध जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः' –ही उनके सम्बल बन गये। गंगा ने कितने लोगों का उद्धार किया, इसकी गणना करने के लिये उन्हें आकाश के नक्षत्र भी कम लगे–'जेते तुम तारे, तेते नभ में न तारे हैं।' सबको मोक्ष प्रदान करने में संलग्न गंगा को निहारकर उन्हें लगा कि अब यमराज के मीरमुंशी चित्रगुप्त जी को न तो अपने बहीखाते में लोगों के पुण्य–पापों का लेखा–जोखा संजोने की जरूरत है और न इसके आधार पर किसी को नरक में भेजने की–

'गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह,
ए रे चित्रगुप्त! मेरे हुकुम पै कान दे।
मूंदि दरवाजेन, नरक सब मूंदि करि
खाता खति जान दै, बही को बहि जान दे।।'

हम सबके दुर्भाग्य से, सबके पाप धोती–पोंछती हुई यह माँ गंगा

आज स्वयं मलिनाम्बरा हो गयी है। आवश्यकता है इसे पुनः श्वेताम्बरा करने की। यदि इसे स्वच्छ करने में अब भी हम प्रमादवश असफल रहे, तो कवियों की वह टोली, जो गंगा के किनारे चाण्डाल या कौवा तक बनकर भी रहने की इच्छुक है– 'श्वपाको काको वा भगवति भवेयं तव तटे'– (बंग– कवि पादुक), हमें क्षमा नहीं करेगी। बंगाल के ही अन्य संस्कृत कवि लक्ष्मीधर की भी वह प्रार्थना भी अपूर्ण रह जायेगी जिसमें उन्होंने धर्म–महोत्सव की विजय–पताका जह्नुनन्दिनी से प्रार्थना की है कि 'जीवन की अवसान–बेला में गंगा का स्पर्श करती हुई अन्तिम सोपान–शिला पर बैठकर लहरों में कूदते–झूलते हुए, 'गंगा–गंगा' पुकारते हुए और आँखों से सर्वात्मना गंगा को ही निहारते हुए शान्ति से प्राण त्याग करें–

'धर्मस्योत्सववैजयन्ति मुकुटस्रग्वेणि गौरीपते–
स्त्वां रत्नाकरपत्नि! जह्नुतनये! भागीरथि! प्रार्थये।
त्वत्तोयान्तशिलानिषण्ण–वपुषस्त्वद्वीचिभिः प्रेङ्खत
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः प्राणाः प्रयास्यन्ति मे।।'